संस्कृत साहित्य सौरभ



# कादम्बरी



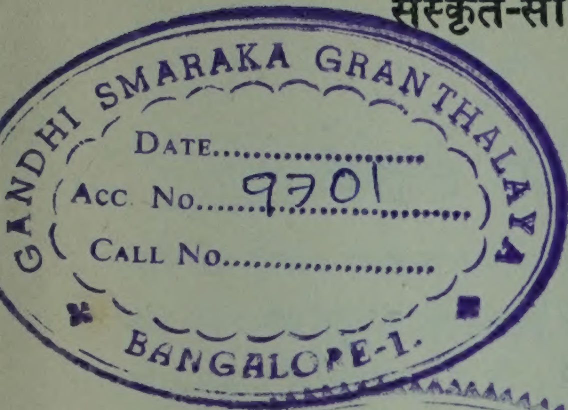




संस्कृत-साहित्य-सौरभ

१

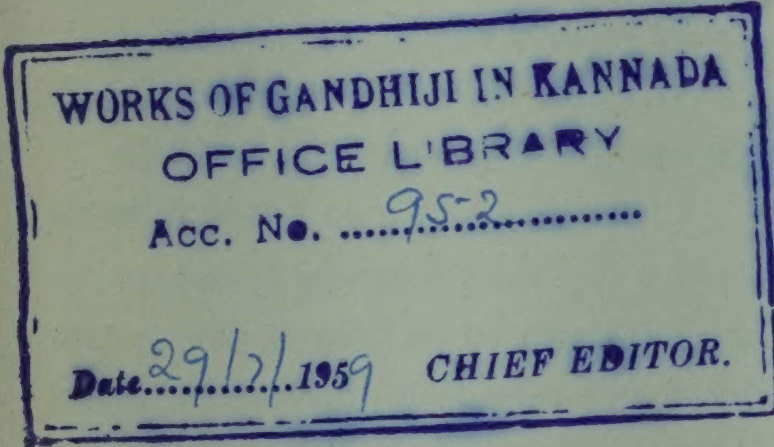





बाणभट्ट-कृत

# कादम्बरी




श्री हरदयालुसिंह
द्वारा
कथा-सार

विष्णु प्रभाकर
द्वारा
सम्पादित

१९५६

सत्साहित्य-प्रकाशन

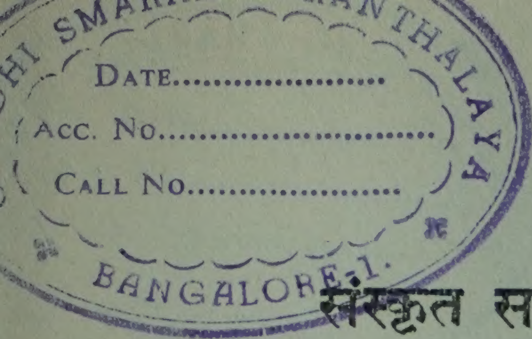
प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल,
नई दिल्ली



तीसरी बार : १९५६
मूल्य
छः आना



मुद्रक
हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस
दिल्ली




# संस्कृत साहित्य सौरभ

हमारा संस्कृत साहित्य अत्यन्त समृद्ध है। भारतीय जीवन का शायद ही कोई ऐसा अंग हो जिसके संबंध में मूल्यवान सामग्री का अनन्त भंडार संस्कृत साहित्य में उपलब्ध न हो। लेकिन खेद की बात है कि संस्कृत से अपरिचित होने के कारण हिन्दी के अधिकाश पाठक उससे अनभिज्ञ हैं। उनमें जिज्ञासा है कि वे उस साहित्य से परिचय प्राप्त करें; परन्तु उसका रस वे हिन्दी के द्वारा लेना चाहते हैं।

पाठकों की इसी जिज्ञासा को देखकर संस्कृत के महाकवियों, नाटककारों आदि की प्रमुख रचनाओं को छोटी-छोटी कथाओं के रूप में हम हिन्दी में प्रस्तुत कर रहे हैं।

पुस्तकों की भाषा बहुत सरल बनाने का प्रयत्न किया गया है। पाठकों की सुविधा के लिए टाइप भी मोटा लगाया गया है।

इन पुस्तकों का सम्पादन हिन्दी के सुलेखक श्री विष्णु प्रभाकर ने बड़े परिश्रम से किया है।

इस माला में कई पुस्तकें निकल चुकी हैं और आगे निकल रही हैं। आशा हैं, हिन्दी के पाठकों को इन पुस्तकों से संस्कृत साहित्य की महान रचनाओं की कुछ-न-कुछ झांकी अवश्य मिल जायगी। पूरा रसास्वादन तो मूल ग्रंथ पढ़कर ही हो सकेगा। यदि इन पुस्तकों के अध्ययन से मूल पुस्तकें पढ़ने की प्रेरणा हुई तो हम अपने परिश्रम को सफल समझेंगे।

## तीसरा संस्करण

इस माला की पुस्तकें बहुत ही लोकप्रिय हो रही हैं और हमें हर्ष है कि कुछ पुस्तकों का चन्द महीनों में तीसरा संस्करण प्रकाशित हो रहा है। आशा है कि भारतीय संस्कृति और साहित्य के प्रेमी पाठक इन पुस्तकों को और भी चाव से अपनावेंगे। —मंत्री

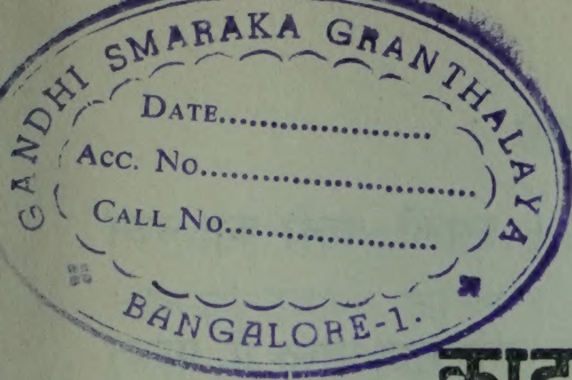
# भूमिका

कादम्बरी महाकवि बाणभट्ट की रचना है। कहते हैं कि वे इसे पूरा करने से पहले ही स्वर्ग सिधार गये थे। उनके बाद उनके पुत्र पुलिन्द ने इसे पूरा किया। इसकी रचना सातवीं शताब्दी में हुई थी। यह गद्य-काव्य संस्कृत साहित्य का शृंगार है। इसकी भाषा इतनी ऊंची और भाव इतने नये हैं कि एक-एक शब्द में सौन्दर्य, एक-एक वाक्य में आकर्षण और एक-एक पंक्ति में रस भरा हुआ प्रतीत होता है।

कुछ लोगों के मन में एक गलत धारणा घर कर गई है कि समूचा संस्कृत साहित्य पद्य में है। लेकिन 'कादम्बरी' उच्चकोटि का गद्य-ग्रंथ है और संस्कृत भाषा के माधुर्य और पौरुष का एक साथ परिचय देता हैं। वह भाव, भाषा, कल्पना, वर्णन-शक्ति सब दृष्टि से अनुपम है।

बाण ने अपनी आत्मकथा लिखी है। 'कादम्बरी' के आरम्भ में भी उन्होंने अपने पूर्वजों का परिचय कराया है। उससे उनके जीवन का हमें पूरा परिचय मिल जाता है। 'कादम्बरी' के अलावा उन्होंने कई उच्च-कोटि के काव्यग्रंथ और नाटक भी लिखे हैं। बाणभट्ट संस्कृत गद्य के आचार्य हैं।

—सम्पादक




# कादम्बरी

: १ :

बहुत पुरानी बात है। अवन्ति देश में उज्जैन नाम का एक प्रसिद्ध नगर था। वह नगर बहुत ही सुन्दर था। प्रकृति की उसपर बड़ी कृपा थी। एक ओर सिप्रा नदी की निर्मल धारा बहती थी और दूसरी ओर नाना प्रकार के फल-फूलों के कारण उसकी शोभा बढ़ गई थी। मनुष्य ने भी अपनी कारीगरी से सुन्दर महल, मकान, हाट और बाजार बनाकर उसकी सुन्दरता को चार चांद लगा दिये थे। वहां शिवजी का एक बहुत बड़ा मन्दिर भी था।

इसी उज्जैन नगर में तारापीड़ नाम के एक बड़े प्रतापी राजा राज्य करते थे। उन्होंने राजा सहस्रबाहु के समान सारी पृथ्वी को जीतकर अपने अधीन कर लिया था। उनके यहां न धन की कमी थी और न विद्या की। वे स्वयं पण्डित थे और पण्डितों का आदर करते थे। उनकी स्त्री का नाम विलासवती था। उनका मंत्री शुकनास बहुत बुद्धिमान् था। वह उनका बालमित्र भी था। इसलिए राजा उसपर बहुत विश्वास करते थे। उसी पर उन्होंने राज्य चलाने का भार छोड़ रखा था और स्वयं निश्चिन्त होकर जीवन का सुख भोग रहे थे। वह भी सदा राजा का भला चाहता था। उसके सुशासन से राज्य भर में सुख और चैन की बंशी बजती थी। उपद्रव

का कहीं नाम तक न था। इसकी पत्नी का नाम मनोरमा था।

यों तो राजा को संसार के सभी सुख प्राप्त थे, परन्तु उनके कोई सन्तान न थी। इस कारण वे सदा उदास रहते थे। एक दिन रानी विलासवती शिव-मन्दिर में पूजा करने गईं। वहां महाभारत की कथा हो रही थी। उसमें उन्होंने सुना कि पुत्रहीन की मुक्ति नहीं होती। यह सुन वह बहुत दुःखी हुईं और उदास होकर राजभवन में लौट आईं। उन्होंने अपने सब आभूषण उतारकर फेंक दिये और एकान्त में जाकर बैठ गईं। उनकी यह दशा देखकर सखियां तथा बड़ी-बूढ़ी स्त्रियां उन्हें ढारस बंधाने लगीं।

इतने में महाराज तारापीड़ वहां आ पहुंचे। उन्हें देखकर रानी रोने लगीं। महाराज ने उन्हें रोते देखा तो उनके पास आकर बैठ गये और बोले, "रानी, इतनी उदास क्यों हो ? मैं तुम्हें हमेशा हँसते-मुस्कराते देखना चाहता हूं। किन्तु तुम हो कि अपनी उदासी को भूल नहीं पातीं। तुम्हें इस प्रकार रोते देखकर मैं बेचैन हो उठता हूं। सच बताओ, तुम्हें क्या कष्ट है ?" शोक की अधिकता के कारण महारानी ने राजा के प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया। पर उनकी एक दासी ने हाथ जोड़कर उनके रोने का सच्चा कारण राजा को बता दिया। उसे सुनकर महाराज गम्भीर हो गये, और रानी को समझाते हुए बोले—"देवी, भाग्य पर किसी का वश नहीं चलता। ईश्वर की इच्छा के बिना संसार में पत्ता भी नहीं हिल सकता। शायद वे हमें सन्तान का सुख दिखलाना नहीं

चाहते।" सन्तान का नाम सुनते ही रानी का रोना और तेज हो गया। इसपर राजा ने बात का रुख बदलते हुए कहा—"परन्तु भाग्य सदा ही रूठा नहीं रहता। जीवन में कभी-न-कभी अच्छे दिन भी आते हैं। इसलिए तुम सच्चे दिल से ईश्वर-भजन, गुरु-भक्ति, साधु-सेवा, आदि धर्म-कार्यों में लगी रहो। मेरा विश्वास है कि एक-न-एक दिन तुम्हारा मनोरथ अवश्य सफल होगा और मैं भी पितृ-ऋण से मुक्त हूँगा। मुझे भी यह राज्य अब भार-सा मालूम होने लगा है, किन्तु क्या करूँ? जिसपर हमारा वश नहीं उसके लिए शोक और दुःख करना व्यर्थ है।"

: २ :

महारानी को इस प्रकार ढाढ़स बँधाकर महाराज चले गये। रानी को कुछ शान्ति मिली। वह उठीं और स्नान-भोजनादि से निपट कर उन्होंने अपने गहने फिर पहन लिये। उस दिन से, जैसा कि महाराज ने सुझाया था, वह देव, ब्राह्मण और गुरुओं की सेवा में विशेष रूप से मन लगाने लगीं। उनका अधिकतर समय मन्दिरों और शिवालयों में बीतने लगा। कभी-कभी तो वह पूजा-पाठ में इतनी मगन हो जातीं कि उन्हें रात हो जाने और महल में लौटने तक का ध्यान न रहता। तब वह मन्दिर में ही घास का बिछावन बिछाकर सो जाती थीं। वह पीपल बटादि वृक्षों की परिक्रमा भी करती थीं। सन्तान की इच्छा से वह कठिन-से-कठिन व्रतों को भी खुशी-खुशी निभा लेती थीं। वह ज्योतिषियों से प्रश्न करतीं, रात्रि को जो भी स्वप्न देखतीं उसकी चर्चा सौभाग्यशालिनी

पुत्रवती स्त्रियों से करतीं और उसका फल पूछतीं।

एक दिन महाराज तारापीड़ ने स्वप्न देखा कि उनकी रानी विलासवती एक सफेद संगमरमर के चबूतरे पर सोई हुई हैं और उनके मुख में चन्द्रमा प्रवेश कर रहा है। यह स्वप्न उन्होंने ठीक प्रभात के समय देखा था। वे उसी समय उठे और शौचादि से निबटकर उन्होंने महा-मंत्री शुकनास को बुलाया और उनसे अपने स्वप्न की चर्चा की। मंत्री ने कुछ सोचकर उत्तर दिया, "महाराज, आपकी इच्छा पूर्ण होती दिखाई देती है। यह स्वप्न एक अच्छा शकुन है। अब शीघ्र ही महारानी के पुत्र होगा। प्रभातकाल का स्वप्न कभी झूठा नहीं हो सकता। मैंने भी आज स्वप्न देखा है कि एक तेजस्वी ब्राह्मण मनोरमा के ऊपर कमलों की कलियाँ बिखेर रहा है।" राजा ने प्रसन्न होकर कहा, "तब तो आपके यहाँ भी पुत्र उत्पन्न होगा। सचमुच हम दोनों के भाग्य जागनेवाले हैं।"

महामंत्री ने ठीक कहा था। कुछ काल के बाद महाराज को पता लगा कि महारानी विलासवती मां बननेवाली हैं। जैसे चाँद का प्रतिबिम्ब पड़ने से सरोवर जगमगाने लगता है, पारिजात के फूलने से जैसे देववन सुशोभित हो जाता है, वैसे ही मातृत्व का भार धारण करने से विलासवती के मुख पर प्रसन्नता की रेखाएं चमक उठीं।

एक दिन जब महाराज मंत्री के साथ राज-भवन में बैठे हुए थे, एक दासी ने आकर उन्हें यह शुभ सूचना दी कि रानी ने पुत्र-रत्न को जन्म दिया है। यह सुख संवाद

पहुँचे। स्त्रियाँ मंगलगान कर रही थीं। महाराज के पास पहुँचकर राजकुमार ने उनके चरण स्पर्श किये। उन्होंने राजकुमार को गले से लगा लिया और बहुत-बहुत आशीर्वाद दिये। महारानी विलासवती ने पुत्र का मस्तक सूँघा और फिर उन्हें अपनी गोदी में बिठा कर जैसे वह धन्य हो गईं।

राजकुमार चन्द्रापीड़ इस प्रकार अन्तःपुर की स्त्रियों से मिलकर महामंत्री शुकनास के घर गये। मंत्री का घर सभी भांति सम्पन्न होने के कारण राजमहलसे होड़ करता था। ज्यों ही दोनों कुमार वहाँ पहुँचे, शुकनास ने दोनों को छाती से लगा लिया। फिर राजकुमार को उचित आसन पर बिठलाकर कहा, "आज हम लोगों के पूर्व पुण्यों का फल प्रकट हुआ है। आज ब्राह्मणों का आशीर्वाद सत्य हुआ है। पृथ्वी आज वास्तव में सौभाग्यवती हुई। जिस प्रजा के प्रतिपालन के लिए आप जैसे राजकुमार का अवतार हुआ उसके भाग्य का क्या कहना!"

वहां से राजकुमार मनोरमा के पास गये। उन्हें भक्तिपूर्वक प्रणाम करके आशीर्वाद प्राप्त किया और राजमहल लौट आये। उसके बाद स्नान, पूजन, भोजनादि से निबट कर पिता की आज्ञा से श्रीमंडप नामक शयनागार में विश्राम के लिए चले गये।

उसी सांझ को इस बात की घोषणा कर दी गई कि प्रातःकाल राजकुमार मृगया के लिए जायंगे। सवेरा होते ही मृगया-प्रेमी सैनिक अपने साथ शिकारी कुत्तों को लेकर कुमारों के पीछे-पीछे वन की ओर चल पड़े।

वन में पहुँचते ही कुमारों ने धनुष की टंकार से सोते हुए नाहरों को जगाया और उनका संहार किया। उन्होंने अपनी कुशलता से बड़े-बड़े भयंकर हिंसक पशुओं को मार गिराया। जब शिकार खेलते-खेलते दोपहर हो गई और सूर्य अपना पूरा जोर लगाकर तपने लगा, तब गर्मी के कारण इन्द्रायुध के मुख से झाग और शरीर से पसीना निकलने लगा। राजपुत्र भी बहुत थक गये, इसलिए दल-बल-सहित सब लोग नगर की ओर लौट पड़े।

दूसरे दिन जब राजकुमार अपने भवन में बैठे हुए थे, तो एक दासी ने एक रूपवती कन्या के साथ कमरे में प्रवेश किया। राजकुमार को प्रणाम करके अपने साथ की कन्या का परिचय देते हुए दासी ने कहा, "महारानी ने इसे आपकी सेवा में भेजा है और अनुरोध किया है कि इसे आप अपनी तांबूलवाहिनी बनायें। यह कुलूत देश की राजकुमारी है। महाराज ने कुलूतराज को परास्त करके इसे बंदी बनाया था। तब से यह महारानी की सेवा में रहती है। उन्होंने इसका कन्या के समान पालन किया है। इसका नाम पत्रलेखा है।"

तब से पत्रलेखा छाया के समान राजकुमार के साथ रहने लगी। उसकी सेवा और गुणों का राजकुमार पर बहुत प्रभाव पड़ा।

: ४ :

कुछ दिन बाद राजकुमार चंद्रापीड़ को सब प्रकार योग्य जानकर महाराज ने उनका राज्याभिषेक करने का निश्चय किया। इस उपलक्ष में राज्य भर में उत्सव

सुनकर राजा इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने अपने शरीर से उतारकर अपना बहुमूल्य हार उस दासी को उपहार में दे दिया।

फिर वे उसी समय अपने मंत्री शुकनास के साथ अन्तःपुर में पहुंचे। पुत्र क्या था मानो चांद धरती पर उतर आया था। उसमें चक्रवर्ती राजा के सब लक्षण विद्यनान थे। राजा बहुत प्रसन्न हुए। घड़ी भर में यह शुभ समाचार राज्य भर में फैल गया। घर-घर आनन्द मनाया जाने लगा। याचकों में मुक्त हस्त से धन बांटा गया। कैदी छोड़ दिये गए। इधर राजा और मंत्री अभी अन्तःपुर में ही थे कि मंत्री के घर से भी पुत्र उत्पन्न होने का समाचार आ पहुंचा। राजा का आनन्द दुगुना हो गया। उन्होंने समाचार लानेवाले को पुरस्कार देकर बिदा किया और नर्तकियों को शुकनास के घर भेजकर अपनी बधाई भिजवाई।

: ३ :

अपनी बालसुलभ क्रीड़ा से सबको प्रसन्न करते हुए दोनों शिशु बढ़ने लगे। कुछ दिन बाद उनका नामकरण-संस्कार हुआ। राजपुत्र का नाम चंद्रापीड़ और मंत्रि-पुत्र का नाम वैशम्पायन रखा गया। दोनों कुमारों के सारे संस्कार इसी प्रकार साथ-ही-साथ सम्पन्न हुए। जब वे सयाने हुए तो उनकी शिक्षा के लिए सिप्रा नदी के किनारे एक विशाल विद्यालय बनवाया गया। उसमें शस्त्र और शास्त्र दोनों ही विद्याएं पढ़ाई जाती थीं। लेकिन शारीरिक व्यायाम और युद्धविद्या का विशेष प्रबंध था। थोड़े ही

दिनों में वहां उन दोनों ने शब्द-शास्त्र, राजनीति, व्यायाम, कला-कौशल, संगीत, साहित्य, अस्त्र-कौशल और कई भाषाएं तथा सभी उपयोगी विद्याएं सीख लीं। ब्रह्मचर्य के पालन और दैनिक व्यायाम से उनके शरीर बड़े सुन्दर, हृष्ट-पुष्ट और तेजस्वी हो गये।

राजकुमार और सयाने हुए। जिस प्रकार चन्द्रमा से संध्या, इन्द्रधनुष से वर्षाकाल, पुष्पों से कल्पलता सुशोभित होती है वैसे ही राजकुमार युवावस्था को पाकर शोभायमान हुए। उनका वक्ष चौड़ा, कमर पतली, बाहु लंबे और वाणी गम्भीर होने लगी।

जब वे सब विद्याओं में पारंगत हो गये तब आचार्यों ने उन्हें घर जाने की आज्ञा दी। यह शुभ समाचार पाकर राजा ने बलाहक नाम के सेनापति के साथ बहुत-से हाथी, घोड़े, रथ, पैदल सेना आदि उनका स्वागत करने के लिए भेजे और साथ ही उनकी सवारी के लिए फारस देश का इन्द्रायुध नाम का एक बहुत सुन्दर घोड़ा भेजा। उसे देख कर राजकुमार मुग्ध हो गये और आचार्य के चरण छू-कर वे घर की ओर चल पड़े। उनके नगर के पास पहुंचने पर नगरवासियों ने बड़ा आनन्द मनाया। अन्तःपुर में एक अपूर्व आनन्द छा गया। स्त्रियां खिले कमलों के समान प्रसन्न हो उठीं। वे टकटकी लगाकर उसी ओर देखने लगीं जिधर से राजकुमार चंद्रापीड़ और मंत्रि-पुत्र वैशम्पायन आ रहे थे।

राजकुमार और वैशम्पायन द्वार पर आये और घोड़ों से उतर पड़े। ड्योढ़ियों को पार करते हुए वे अन्दर

होंगे। यही सोचते-सोचते उनके नत्र झपकने लगे।

अभी चंद्रापीड़ की आंख झपकी ही थी कि उनके कानों में वीणा की मधुर ध्वनि गूंज उठी। चकित-विस्मित उन्होंने सोचा कि ऐसे सघन वन में यह मधुर संगीत कहां से आ रहा है। उनकी नींद भाग गई और अपने कुतूहल को शान्त करने के लिए वे तुरन्त घोड़े पर चढ़कर उसी ओर चल पड़े जिधर से संगीत का मधुर स्वर आ रहा था। थोड़ी दूर जाकर उन्होंने देखा—उस रमणीक वन में भगवान् शिव की एक मूर्ति है। उसीके सामने बैठी हुई एक सोलह वर्ष की कन्या वीणा बजा रही है और भगवान् शंकर की स्तुति कर रही है। उसके शरीर पर भस्म रमी हुई है। उसकी जटाएं कंधों पर छिटक रही हैं। उन्होंने सोचा कि निश्चय ही यह कोई तपस्विनी कन्या जान पड़ती है।

इन्द्रायुध को एक पेड़ की शाखा में बांधकर चन्द्रापीड़ ने चुपके से भगवान् शंकर के मंदिर में प्रवेश किया और उन्हें प्रणाम करके वह एक कोने में बैठ गये। कुछ समय पश्चात् गान समाप्त होने पर वह कन्या भी उठी और भगवान् शंकर को प्रणाम करके चलने लगी, तभी सहसा उसकी दृष्टि राजकुमार पर पड़ी। उसने उनका स्वागत किया और अपने आश्रम पर चलकर आतिथ्य स्वीकार करने के लिए अनुरोध किया। राजकुमार अपने को परम भाग्यशाली समझकर उसके पीछे-पीछे चल दिये।

वह तपस्विनी कन्या उन्हें एक गुफा में ले गई और

उचित स्वागत के बाद उन्हें शिला के आसन पर बिठाया। फिर आश्रम के वृक्षों से फल तोड़ लाई और अतिथि के आगे रख दिये। उन फलों को खाकर राजकुमार बहुत संतुष्ट हुए और उन्होंने वह रात वहीं बिताने का निश्चय किया।

इधर-उधर की बातें करने के बाद आखिर चंद्रापीड़ ने उस तपस्विनी से उसका परिचय पूछा। तब एक दीर्घ निःश्वास लेकर उस कन्या ने कहना आरम्भ किया––

"मेरा जन्म गन्धर्व-कुल में हुआ है। मेरे पिता का नाम हंस, माता का नाम गौरी और मेरा नाम महाश्वेता है। युवा होने पर एक बार मैं वसन्तु ऋतु में अपनी माता के साथ इसी सरोवर में स्नान करने आई थी। तभी सहसा वायु के झोंकों के साथ एक अलौकिक सुगन्ध यहां आकर फैल गई। वह गंध इतनी आकर्षक थी कि मैं बिना सोचे-विचारे अकेली ही उसका पता लगाने के लिए चल पड़ी। थोड़ी दूर जाकर मैंने देखा कि एक महातेजस्वी मुनिकुमार अपने सखा के साथ स्नान करने के लिए जा रहे हैं। वे कानों में फूल की मंजरी पहने हुए थे और वह सुगन्ध उसी मंजरी से आ रही थी। मुनिकुमार का सौंदर्य देखकर मैं अपनी सुधबुध खो बैठी। मेरा अनुराग उनके प्रति उमड़ पड़ा। वे मुनिकुमार भी शायद मुझे प्रेम करने लगे थे। उनके सखा ने मुझे बताया कि उनका नाम पुण्डरीक है। उनके पिता का नाम श्वेतकेतु और माता का नाम लक्ष्मी है। जब मैंने उस मंजरी के संबंध में उन मुनिकुमार से प्रश्न किया तो वे

मनाये गये। मंत्री शुकनास ने उन्हें राजकाज चलाने के विषय में अनेक सारगर्भित उपदेश दिये और एक दिन महाराज तारापीड़ अपने पुत्र के हाथ में शासन का भार सौंपकर निश्चिंत हो गये।

इधर शासन का भार संभालने के बाद चन्द्रापीड़ ने दिग्विजय करने का विचार किया और एक शुभ दिन शक्तिशाली सेना लेकर वे अपने विचार को पूरा करने के लिए चल पड़े। पत्रलेखा और वैशम्पायन उनके साथ थे। दुन्दुभी की ध्वनि, वीरों के सिंहनाद और हाथियों की चिंघाड़ से दशों दिशायें गूंज उठीं। सेना के चलने से मानो पृथ्वी कांपने लगी और धूलि से आकाश में अन्धकार छा गया। वे जिस ओर भी निकल जाते उधर ही जय-जय के नारों से आकाश गूंजने लगता।

एक के बाद एक राजाओं को जीतते हुए चन्द्रापीड़ कैलास के निकट सुवर्णपुरी में जा पहुंचे। वहां किरात लोग रहते थे। उन्हें पराजित करने के बाद राजकुमार की इच्छा हुई कि कुछ दिन इसी मनोरम पर्वत-प्रदेश में आराम किया जाय। यही सोचकर चंद्रापीड़ ने सेना-सहित किरात देश में डेरे डाल दिये। दूसरे दिन वे इन्द्रायुध पर सवार होकर मृगया के लिए निकले तो उन्होंने वन में किन्नरों के एक जोड़े को झाड़ी में से निकलते हुए देखा। उन्होंने उसके पीछे इन्द्रायुध को छोड़ दिया। एड़ी लगते ही वह हवा से बातें करने लगा। वह जितना तेज भागता था उससे अधिक तेज किन्नर भागने लगते थे। लेकिन यह होड़ अधिक देर न रह सकी। पर्वत-शिखर

पर इन्द्रायुध हांपने लगा और व दोनों किन्नर उस पहाड़ी प्रदेश में कहीं छिप गये।

राजकुमार खाली हाथ लौटने पर विवश हो गये। तभी उन्होंने देखा कि सूर्य अपने प्रचंड ताप से तप रहा है। गर्मी के कारण कण्ठ सूख रहा है और थकान इतनी है कि एक कदम आगे बढ़ना असम्भव है। इधर-उधर दृष्टि घुमाने के पश्चात् भी जब वे वापस लौटने का कोई रास्ता न खोज सके तो हार कर एक सघन वृक्ष की छाया में बैठ गये और घोड़े को भी वहीं चरने के लिए छोड़ दिया। कुछ देर आराम करने के बाद उन्हें पानी की चिन्ता हुई। तभी एक ओर से कुछ हाथी नहाकर आते हुए दिखाई दिये। उन्होंने अनुमान किया कि निश्चय ही उस ओर कोई सरोवर होगा। लेकिन पैदल चलना दूभर था। वे घोड़े पर सवार होकर उधर ही चल पड़े जिधर से हाथी आ रहे थे। कुछ दूर जाने पर उन्हें एक सरोवर दिखाई दिया। उसमें नाना प्रकार के कमल खिले हुए थे। उनपर भौंरे मंडरा रहे थे। उनका कुम्हलाया हुआ मन खिल उठा। घोड़े से उतरकर पहले तो उन्होंने जल पिया, फिर पास के एक सघन कुंज में एक शिला पर कमल-पत्र बिछाकर लेट गये। वे मन-ही-मन सोच रहे थे कि दुःख के पश्चात् सुख अवश्य मिलता है। उस किन्नर-युगल को पकड़ने में जितना परिश्रम करना पड़ा उसका प्रतिफल इस सुन्दर सरोवर के दर्शन से प्राप्त हो गया। इस सरोवर के सौंदर्य पर मुग्ध होकर भगवान् शंकर यहीं कहीं रहते

कर उठा· · · · ·।"

यह कहते-कहते महाश्वेता अचेत होकर गिरने लगी, पर चन्द्रापीड़ ने उसे संभाल लिया और नाना प्रकार से सान्त्वना देते हुए समझाने लगे।

चेतना लौटने पर महाश्वेता ने अपनी कहानी फिर आरम्भ करते हुए कहा, "हे महानुभाव, जब मैंने पुण्डरीक का शव अपनी आंखों से देख लिया तो मैंने तरलिका से कहा—'विरह अग्नि में जलने की अपेक्षा चिता में जल मरना कहीं अधिक अच्छा है। तुम लकड़ियां चुनकर मेरे लिए चिता बना दो, जिसमें भस्म होकर मैं भी अपने प्राणों का अन्त कर दूं।' उसी समय आकाश से एक महा-पुरुष श्वेत वस्त्र पहने, कानों में कुंडल, गले में हार और हाथों में कंगन धारण किये हुए अपने प्रकाश से चारों दिशाओं को जगमगाते हुए धरती पर उतरे। उन्होंने मुझे बताया कि पुण्डरीक फिर जी उठेगा और मुझे सती होने से मना करते हुए वह उसका शरीर उठा कर आकाश में उड़ गये। उस रहस्य पुरुष को पुण्डरीक के शरीर को इस प्रकार ले जाते हुए देखकर कपिंजल भी उनके पीछे-पीछे उड़ने लगा। कुछ क्षण बाद वे दोनों तारों के संसार में विलीन हो गये।

"कपिंजल के इस प्रकार लुप्त हो जाने से मैं और बेचैन हो उठी। तरलिका ने कहा, 'देवी, उस दिव्य पुरुष ने तुम्हें जो वचन दिया है, वह अवश्य सत्य होगा, इसलिए तुम्हारा कर्त्तव्य है कि इस भविष्यवाणी की सत्यता की परीक्षा करने के लिए तुम यहीं निवास करो। कपिंजल

भी आता ही होगा।' मैंने वह रात्रि वहीं व्यतीत की। मेरा एक-एक पल कल्प के समान बीतने लगा। मेरे मन में वैराग्य उदय हुआ और पुण्डरीक का वही कमण्डल, वही रुद्राक्ष-माला, वही ब्रह्मचर्य व्रत लेकर मैंने भगवान् शंकर की शरण में जाने का निश्चय कर लिया।

"जब मैं उस रात्रि को घर न लौटी तो माता-पिता ने मेरा पता लगाना आरम्भ किया और यहां आकर मुझे घर ले चलने की कोशिश करने लगे, परन्तु मैं न गई। अंत में वे लौट गये। तब से लेकर अबतक मैं पुण्डरीक के जी उठने की आशा में इसी गुफा में रहती हूं।"

: ५ :

महाश्वेता की यह करुण कथा सुनकर चन्द्रापीड़ के मुंह से सहसा निकल पड़ा, "धन्य हो तुम महाश्वेता और धन्य है तुम्हारा व्रत! इतनी तन्मयता से तो शायद पार्वती ने भी शिव के लिए तपस्या न की होगी।" महाश्वेता ने कहा, "महानुभाव, आप सहृदय होने के कारण मुझसे सहानुभूति रखते हैं, किन्तु यदि मैं आपको अपनी एक सखी का वृत्तान्त सुनाऊं तो उसके व्रत और निष्ठा के सामने आपको मेरी तपस्या बिल्कुल फीकी जान पड़ेगा। सबसे अद्भुत बात तो यह है कि मेरी सखी ने वे नियम और व्रत मेरे ही कारण ले रखे हैं। उसका नाम कादम्बरी है। कादम्बरी का जन्म अप्सरा-कुल में हुआ है, जिसकी उत्पत्ति अमृत से हुई थी। उसके पिता का नाम गंधर्वराज चित्ररथ और माता का नाम मदिरा है।

बोले—'तुम इसका अता-पता पूछकर क्या करोगी ?' और यह कहते हुए उन्होंने वह मंजरी मेरे कान में पहना दी। वास्तव में वह पारिजात वृक्ष की मंजरी थी। वह वृक्ष समुद्र-मन्थन के समय प्रकट हुआ था। मेरा स्पर्श करते ही मुनिकुमार के शरीर में बिजली-सी दौड़ गई और वे अपनी सुधबुध खो बैठे। उनके हाथ से रुद्राक्ष-माला गिर पड़ी। उसे उठाकर मैंने अपने गले में पहन लिया और स्नान करने के लिए सरोवर की ओर चली गई।

"जब मैं कुछ दूर निकल गई तो मुनिकुमार के सखा ने कहा, 'मित्र, आज यह तुम्हें क्या हो गया है ? तुम्हारे मन में अचानक ऐसा अनोखा परिवर्तन कैसे सम्भव हुआ ? तुम्हारी रुद्राक्ष की माला कहां गई ?' यह सुनकर मुनिकुमार लज्जित हो उठे और बोले, 'वह युवती मेरी रुद्राक्ष-माला ले गई है। मैं उसको कदापि क्षमा न करूँगा।'

"फिर मुनिकुमार पुण्डरीक ने मेरी ओर देखकर कहा, 'अरी धूर्त, हमारी रुद्राक्ष-माला लिये कहां जा रही हो ?' मैं स्वयं बेसुध हो रही थी। उसी अवस्था में मैंने अपने हार को रुद्राक्ष की माला समझकर उसे पुण्डरीक की ओर बढ़ा दिया। उन्होंने भी मोतियों के उस हार को ही अपनी माला समझ लिया। वे उसे लेकर चले गये और साथ में मेरा हृदय भी ले गये। इसके बाद मैं अपनी माता के साथ घर लौट गई, किन्तु पुण्डरीक को न भुला सकी।

"मैं जिधर भी देखती थी उधर ही मुझे उनके दर्शन होते थे। जैसे नलिनी सूर्य की, चांदनी चन्द्रमा की, मयूरी बादल की अनुरागिणी होती है वैसे ही मैं भी उनकी अनुरागिणी बन गई। एक दिन मेरी दासी तरलिका पुण्डरीक का एक पत्र लेकर मेरे पास आई। उसमें लिखा था—जैसे हंस को मुक्तामाला में मृणाल का भ्रम हो जाता है और वह ठगा जाता है वैसे ही मैं तुम्हारी माला से ठगा गया हूँ।

"इस पत्र को पढ़कर मेरा मन और भी बचैन हो उठा। मैं पुण्डरीक के विरह में पागल-सी हो गई। संध्या के समय मुझे सूचना मिली कि पुण्डरीक का मित्र रुद्राक्ष-माला लेने के बहाने मुझसे कुछ कहने के लिए आया है। उसके द्वारा मुझे पता लगा कि पुण्डरीक मेरी याद में मुझसे भी अधिक बेचैन हैं। यह सुनकर मुझको बड़ी चिन्ता हुई। मैं उनकी प्राणरक्षा के लिए, लोक-लाज को तिलांजलि देकर, तरलिका के साथ उनके पास चल पड़ी। जब मैं उस सरोवर के पास पहुंची तो मुनिकुमार के सखा कपिंजल के रोने का शब्द मेरे कानों में पड़ा। उस करुण स्वर को सुनकर मैंने अनुमान कर लिया कि अवश्य ही कुछ-न-कुछ अनिष्ट हो गया है। फिर भी अपनी वेदना को हृदय में दबाये हुए, उस करुण स्वर का पीछा करती हुई मैं उसी सरोवर के पासवाले लतामंडप में जा पहुँची। वहां पुण्डरीक प्राणहीन होकर पड़े हुए थे। उनका शव देखकर मैं भी बेहोश होकर गिर पड़ी और होश में आने पर विलाप करने लगी, जिसे सुनकर सारा वन हाहाकार

के पास आई और बहुत देर तक उनसे भारतवर्ष, माता-पिता, उज्जयिनी आदि के सम्बन्ध में बातचीत करती रही। फिर लौट गई।

सवेरे नित्य-क्रिया से छुट्टी पाकर चन्द्रापीड़ कादम्बरी के महल में गये। वहां महाभारत की कथा हो रही थी। कादम्बरी और महाश्वेता सब सुन रही थीं। राजकुमार भी वहीं बैठ गये। और जब कथा समाप्त हो गई तो उसका अभिप्राय ताड़कर महाश्वेता ने कादम्बरी से कहा, "इन्हें अपने परिजनों से बिछुड़े हुए बहुत दिन हो गये हैं। अब यदि आज्ञा हो तो अपनी छावनी को जायं। ये तो दिग्विजय करने निकले थे। बड़ी कृपा करके इन्होंने मेरे आश्रम को पवित्र किया और मेरे अनुरोध पर यहां भी आये।"

कादम्बरी ने कहा, "क्या करूँ इन्हें जाने देने को जी नहीं चाहता, परन्तु विवश हूँ।" यह कहकर उसने गन्धर्वगणों को बुलवाया और उन्हें आज्ञा दी कि चन्द्रापीड़ को उनके शिविर तक पहुंचा आवें। राजकुमार महाश्वेता और कादम्बरी से विदा लेकर गंधर्वों के साथ चल पड़े और सकुशल अपनी छावनी पहुंच गये। उन्हें देखकर सेना के लोगों ने बड़ा आनन्द मनाया, लेकिन उन्हें आये अभी एक रात ही बीती थी कि गन्धर्व-नगर से केयूरक फिर आ पहुंचा। उसने कादम्बरी की दयनीय दशा का वर्णन करते हुए कहा, "महाराज, आपके चले आने के बाद कादम्बरी आपको याद करते-करते बहुत व्यथित हो गई हैं, आप एक बार चलकर उन्हें धैर्य दें।" कादम्बरी

की विरह-व्यथा का हाल सुनकर चन्द्रापीड़ भी बड़े दुःखी हुये और वैशम्पायन को छावनी की रक्षा का भार सौंपकर वह फिर गन्धर्व-नगर की ओर चल पड़े। पत्र-लेखा और केयूरक भी उनके साथ गये। चन्द्रापीड़ को आया देखकर कादम्बरी को बड़ी शान्ति मिली। वह महलों को छोड़कर महाश्वेता के साथ कुटिया में रहने के लिए आ गई थी। दिन भर चन्द्रापीड़ वहीं रहे और कादम्बरी को ढाढ़स बंधा कर सन्ध्या को अपनी छावनी में लौट आये।

: ६ :

इसी बीच एक दिन उज्जयिनी से महाराज का पत्र लेकर एक दूत वहां आया। उस पत्र से पता लगा कि उनके माता-पिता उनके इस लम्बे वियोग के कारण बहुत दुःखी हो रहे हैं और उनसे शीघ्र मिलना चाहते हैं। राजकुमार के सामने बड़ी जटिल समस्या उपस्थित हो गई। एक ओर कादम्बरी और महाश्वेता का प्रेम, दूसरी ओर माता-पिता का अनुरोध, दोनों ही की रक्षा करना आवश्यक था।

अन्त में उन्होंने बहुत-कुछ सोच-समझकर अपने एक सैनिक मेघनाद को आज्ञा दी कि वह दो-तीन दिन वहीं ठहरे। जब पत्रलेखा और केयूरक आएं तो उनसे कह दे कि पिता के पास से एक आवश्यक संदेश आ जाने के कारण हम उनकी प्रतीक्षा न कर सके और उज्जयिनी चले गये। फिर उन्होंने वैशम्पायन से कहा कि वह सेना

मैंने अपना बचपन इसी कादम्बरी के साथ बिताया है। इसलिए वह मेरी अभिन्न-हृदया सखी हो गई। जब उसने मेरी इस व्यथा का हाल सुना तब असीम प्रेम के कारण उसने भी प्रतिज्ञा की कि जबतक मैं विरह-अवस्था में रहूँगी तबतक वह भी विवाह न करेगी। यदि माता-पिता उसके विवाह के लिए हठ करेंगे तो वह प्राण त्याग कर देगी। इस प्रतिज्ञा से गंधर्वराज और मदिरा दोनों बहुत दुःखी हुए। वह उनकी एकमात्र सन्तान थी। उसे वे इस प्रकार कैसे दुःखी देख सकते थे? जब वह किसी प्रकार न मानी तो अन्त में उन्होंने उसके हठ का समाचार मेरे पास भेजा। मैं अवाक् रह गई। मैंने कादम्बरी को लाख समझाया कि मुझे तो भाग्य ने विरह के गड्ढे में ढकेल दिया है, पर तू क्यों व्यर्थ अपने आपको मेरे साथ झुलसाना चाहती है। यदि तू मुझे सांत्वना देना चाहती है तो ब्याह कर ले। तुझे सुखी देखकर मैं अपना दुःख भी भूल जाऊंगी। यदि तू मेरे साथ कठिन व्रत निभाने पर तुली रहेगी तो मुझे और भी दुःख होगा। लेकिन मेरी बातों का कादम्बरी पर कुछ भी प्रभाव न हुआ। वह अपने हठ पर जमी रही। वह यहीं पास ही अपने माता-पिता के साथ रहती है।"

इस प्रकार कादम्बरी के विषय में बातचीत करते हुए सांझ हो गई और वे दोनों नित्य-क्रिया से निवृत्त होकर विश्राम करने चले गये। दूसरे दिन सवेरे एक हृष्ट-पुष्ट कृपाणधारी युवक को साथ लिए हुए तरलिका आई। उस युवक का नाम केयूरक था और वह कादम्बरी

की माता की ओर से सन्देश लेकर आया था। उसने कादम्बरी के बारे में एक दुःखद समाचार सुनाया, जिसे सुनकर महाश्वेता को बड़ा दुःख हुआ। कुछ सोचकर उसने केयूरक को बिदा किया और कहला भेजा कि वह स्वयं आ रही है।

उसके जाने के बाद महाश्वेता ने चन्द्रापीड़ से कहा, "चलिए, आपको भी कादम्बरी के पिता की राजधानी दिखा लायें।" वे तुरन्त तैयार हो गये और दोनों गंधर्व-नगर की ओर चल दिये। वहां जाकर राजकुमार ने जब कादम्बरी के महल का ठाठ देखा तो अवाक् रह गया।

महाश्वेता ने कादम्बरी से राजकुमार का परिचय कराया। इसी बीच कादम्बरी को उसके माता-पिता ने बुला भेजा और वह महाश्वेता को साथ लेकर अन्दर चली गई। यद्यपि कादम्बरी और चन्द्रापीड़ का परिचय क्षणिक था तो भी दोनों के मन में एक-दूसरे के प्रति अनुराग उत्पन्न हो चुका था। कादम्बरी की प्रधान परिचारिका मदलेखा चन्द्रापीड़ के लिए मोतियों का हार, श्वेत दुकूल, चन्दन, अंगराग आदि प्रसाधन लेकर आई और अपने हाथ से उनके अंग में लगाया और फिर मोतियों की माला उनके गले में पहनाकर बोली, "इसे कादम्बरी ने आपके लिए उपहार-स्वरूप भेजा है। यह माला चौदह रत्नों के साथ समुद्र से निकली थी। इसे वरुणदेव ने कादम्बरी के पिता चित्ररथ को दिया था।" थोड़ी देर के बाद कादम्बरी अपनी दूसरी सखियों के साथ चन्द्रापीड़

लेकर पीछे-पीछे आए। हम अभी जाते हैं। और वे शीघ्र ही उज्जयिनी पहुंच गये। उनको देखकर उनके माता-पिता को बड़ा आनन्द हुआ। उसके तीन-चार दिन बाद मेघनाद भी आ पहुंचा। उससे कादम्बरी और महाश्वेता की दयनीय दशा की बात सुनकर उन्हें बड़ा दुःख हुआ और वह एक बार फिर गन्धर्व-नगर जाने के लिए तैयार हो गये।

इतने में उन्हें समाचार मिला कि वैशम्पायन भी सेना-सहित नगर के कुछ दूर ही रह गये हैं। यह सुनकर महाराज तारापीड़ से आज्ञा लेकर अरुणोदय होते ही चन्द्रापीड़ भी चल पड़े। वह गंधर्व-नगर जाने के विषय में सलाह करने के लिए वैशम्पायन से आधे रास्ते में ही मिलना चाहते थे। सेना में पहुंचकर उन्हें मालूम हुआ कि वैशम्पायन आक्षोद सरोवर पर गये थे और उसीके निकट एक निकुंज में बैठकर इतने तन्मय हो गये कि बुलाने पर उन्होंने स्पष्ट शब्दों में वहां से हटने से इन्कार कर दिया। लोगों को उनके इस आकस्मिक विचार-परिवर्तन का कोई कारण मालूम नहीं हो सका। यह सुनकर चन्द्रापीड़ ने अनुमान लगाया कि हो-न-हो, वह महाश्वेता के आश्रम में गये होंगे। इसलिए उन्हें वहां से ले आना ही उचित है। फिर विचार आया कि वैशम्पायन का हाल जाने बिना उनके पिता शुकनास तथा माता मनोरमा की बड़ी बुरी दशा हो रही होगी। उन्हें भी जाकर सान्त्वना देना परम आवश्यक है। उन्हें सूचित करके फिर वैशम्पायन की खोज में निकलना ठीक होगा। यह सोचकर वह

उज्जयिनी लौट गये। वैशम्पायन के गुम हो जाने का समाचार राजधानी में पहले ही पहुंच चुका था और नगर में शोक छाया हुआ था।

शुकनास और मनोरमा को जो दुःख था वह तो था ही, पर महाराज तारापीड़ और रानी विलासवती भी बहुत दुःखी थे। उन्होंने यहांतक कह डाला कि चन्द्रापीड़ ही इस सारे दुःख का कारण है। शुकनास ने इस बात का बहुत विरोध किया पर चन्द्रापीड़ अपने मित्र का पता लगाने के लिए स्वयं इन्द्रायुध पर सवार होकर निकल पड़े। वह वैशम्पायन से मिलने की आशा में जब महाश्वेता के आश्रम में पहुंचे तो वहां उन्होंने महाश्वेता को अपार दुःख-सागर में डूबे हुए पाया। जब राजकुमार ने उसके दुःख का कारण पूछा तो वह कहने लगी——"क्या कहूँ, मुझसे एक ब्रह्महत्या के समान अपराध हो गया है। और इसी आत्मग्लानि के मारे मैं मरी जाती हूँ। एक दिन की बात है कि आप ही की आयु का एक ब्राह्मणकुमार मुझसे आकर प्रेम-भिक्षा मांगने लगा। मैंने उसे दुराचारी समझा और क्रोध में आकर शाप दे डाला कि जा तू पक्षी बन जा। बस, वह निष्प्राण होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। बाद में उसके साथियों से मुझे मालूम हुआ कि वह तो आपका मित्र वैशम्पायन था।"

यह कहकर महाश्वेता फिर रोने लगी। वैशम्पायन की मृत्यु का हाल सुनकर चन्द्रापीड़ को इतनी चोट पहुंची कि वह बेहोश होकर धरती पर गिर पड़े और महाश्वेता

के देखते-ही-देखते उनके प्राण-पखेरू उड़ गये।

: ७ :

उधर, पत्रलेखा के मुख से चन्द्रापीड़ के आने का समाचार सुनकर कादम्बरी बड़ी प्रसन्न हो रही थी। उनसे मिलने के लिए वस्त्र-आभूषण पहनकर वह महाश्वेता के आश्रम पर पहुंची। वहां चन्द्रापीड़ को मरा देखकर वह दुःख के मारे पागल हो गई और उनके चरणों पर लोटकर विलाप करने लगी। कादम्बरी का स्पर्श पाते ही चन्द्रापीड़ के शरीर से एक दिव्य ज्योति उत्पन्न हुई, जिसके कारण चारों ओर प्रकाश फैल गया और तभी आकाशवाणी सुनाई पड़ी––"पुत्री महाश्वेता, तू हमारे कहने से प्राण धारण कर। तेरी भेंट तेरे प्रियतम से अवश्य होगी। पुण्डरीक का शरीर हमारे तेज से अजर होकर इस लोक में सुरक्षित है और चन्द्रापीड़ का शरीर भी हमारे तेज के कारण नष्ट नहीं होगा। ये दोनों योगियों के शरीर की भांति फिर जीवित होंगे। इसलिए इनका न तो परित्याग करना और न अन्त्येष्टि-संस्कार ही करना। जबतक वे फिर न जी उठें तबतक इनकी रक्षा करना।"

इस आकाशवाणी को सुनकर सब लोग स्तम्भित-चकित आकाश की ओर देखने लगे। महाश्वेता ने इन्द्रायुध को यह कहकर कि स्वामी के मर जाने पर तू जी कर क्या करेगा, आक्षोद सरोवर में धकेल दिया। वह डूब गया, पर थोड़ी देर के बाद एक जटाधारी तपस्वी तालाब में से निकला। महाश्वेता ने पहचाना वह कपिंजल

था जो कि पुण्डरीक का शरीर लेने के लिए देवता के पीछे-पीछे ग्राकाश में उड़ गया था। उसने महाश्वेता से कहा, "मैंने चन्द्रलोक में जाकर पुण्डरीक का शरीर सुरक्षित देखा है।"

पुण्डरीक का नाम सुनकर महाश्वेता उसका हाल जानने के लिए ग्रधीर हो उठी। उसने एक साथ ही कई प्रश्न कपिंजल से पूछे कि पुण्डरीक चन्द्रलोक में क्यों पड़ा है, कैसे पड़ा है, ग्रौर कबतक पड़ा रहेगा, ग्रादि।

कपिंजल ने उसे ग्राश्वासन देते हुए कहा, "महाश्वेता, जो ज्योतिरूप ग्राकाश से उतरकर पुण्डरीक के शव को ले गये थे वे स्वयं चन्द्रमा थे। जब उन्हें यह पता चला कि पुण्डरीक की माता गौरी वही है, जिसे उन्होंने ग्रपनी किरणों से उत्पन्न किया था ग्रौर पुण्डरीक तुम्हारा ही भावी पति है तो वे उसके शरीर को सुरक्षित रखने के लिए शीतल किरणोंवाले ग्रपने लोक में ले गये।"

महाश्वेता ने ग्रधीर होकर पूछा, "यदि चन्द्रमा मुझपर इतने दयालु हैं तो पुण्डरीक को ग्रभी जीवित क्यों नहीं कर देते? उसके शव को चिरकाल तक सुरक्षित रखकर ग्रौर मुझे उनके विरह में बिलखते देखकर उन्हें क्या मिलेगा?"

पुण्डरीक ने कहा, "महाश्वेता, इसका भी एक कारण है। पुण्डरीक को शाप मिला हुग्रा है। जबतक उस शाप की ग्रवधि समाप्त नहीं हो जाती तबतक वह जीवित नहीं हो सकते। ज्यों ही शाप का समय बीत जायगा, चन्द्रदेव स्वयं पुण्डरीक को जीवित कर देंगे। इसलिए

वे आकाशवाणी के रूप में तुम्हें कह गये हैं कि पुण्डरीक के पुनर्जीवित होने तक प्रतीक्षा करना, मरना नहीं।"

महाश्वेता ने फिर पूछा, "अच्छा कपिंजल, चन्द्रलोक से लौटने पर तुम्हारे साथ क्या बीती ?"

कपिंजल बोला–"मैं पुण्डरीक का समाचार लेकर आ रहा था कि आकाश-मार्ग में मुझे एक बहुत ही क्रोधी मनुष्य मिला। साधारण-सी बात पर उसने मुझे शाप दे दिया कि तू घोड़ा बन जा। लेकिन जब मैंने बहुत अनुनय-विनय की तो उसने कहा कि जब महाश्वेता तुझे नदी में ढकेलेगी तब तू फिर मनुष्य बन जायगा। उसी मनुष्य ने मुझे यह भी बताया था कि शापवश चन्द्रमा भी पृथ्वी पर अवतार लेंगे। वह तारापीड़के घर उत्पन्न होंगे और उनका नाम चन्द्रापीड़ होगा। पुण्डरीक भी चन्द्रापीड़ का मित्र बनकर शुकनास के घर जन्म लेगा और उसका नाम वैशम्पायन होगा। उस मनुष्य से मैंने प्रार्थना की कि महाराज, आपने मुझे घोड़ा बनने का शाप तो दे दिया, यदि कृपा कर आप मुझे यह सुभीता कर दें कि मैं किसी दुष्ट मनुष्य की सवारी न बनकर चन्द्रमा के अवतार चन्द्रापीड़ की सवारी बनूँ तो आपकी बड़ी कृपा होगी। उसने मेरी इस प्रार्थना को स्वीकार कर लिया और अब तक मैं चन्द्रापीड़ का घोड़ा बनकर उनकी सेवा करता रहा। आज तुमने मुझे अपने हाथों से सरोवर में ढकेला था। इसलिए ऋषि के वचनानुसार मैं फिर मनुष्य बन गया हूँ। अब तुम्हारे दुख के दिन भी शीघ्र समाप्त होने वाले हैं। तुम चन्द्रापीड़ के शरीर की रक्षा करो। चन्द्रमा

के अवतार होने के कारण उनका शरीर नष्ट नहीं होगा।"

यह कहकर कपिंजल आकाश में उड़ गया। कादम्बरी और महाश्वेता ने भाग्यरेखा को अटल समझकर आकाश-वाणी की आज्ञा को स्वीकार कर लिया। वे वहीं रहने लगीं और चन्द्रापीड़ तथा पुण्डरीक के पुनर्जीवित होने के स्वप्न देखने लगीं।

: ८ :

कुछ दिनों के बाद महाराजा तारापीड़ और रानी विलासवती तथा कादम्बरी के माता-पिता भी वहीं पर आ गये। वे इस लोकोत्तर व्यापार को देखकर चकित रह गये। निष्प्राण शरीर और भी अधिक कान्तिमान हो गया था। राजा उसी दिन से थोड़ी दूर पर आश्रम बना कर रहने लगे। उन्होंने राज्य का भार शुकनास को सौंप दिया था। अब तो वह प्रतिदिन अपने पुत्र के पुनर्जीवन के लिए प्रार्थना करते थे। आखिर एक दिन कादम्बरी और महाश्वेता की तपस्या और उनकी प्रार्थना स्वीकृत हुई। शाप की अवधि बीत जाने पर चन्द्रापीड़ और वैशम्पायन दोनों जी उठे। सारे राज-परिवार में अपार प्रसन्नता छा गई। शुकनास और मनोरमा के पास जब यह समाचार पहुंचा तो उन्हें आश्चर्य और आनन्द दोनों हुए। चित्ररथ, हंस, मदिरा और गौरी ने जब यह समाचार सुना तो उनको ऐसा लोकोत्तर आनन्द प्राप्त हुआ कि जिसकी स्वप्न में भी आशा न थी। कादम्बरी और महाश्वेता का तो कहना ही क्या था! जिसके लिए वे तप कर रही थीं उनकी वही अभिलाषा पूरी हो गई।

अंत में चित्ररथ ने अपना सारा राज्य और कादम्बरी दोनों ही चन्द्रापीड़ के हवाले कर दिये। इस प्रकार चन्द्रापीड़ और वैशम्पायन (पिछले जन्म के पुण्डरीक) दोनों ही अपनी प्रियतमाओं को प्राप्त करके आनन्दपूर्वक जीवन बिताने लगे। दुःख के बाद सुख अवश्य आता है। सुख-दुःख का चक्र अविराम गति से नियति के पथ पर चलता रहता है।

कुछ दिनों तक वैवाहिक जीवन का सुख अनुभव करके चन्द्रापीड़ उज्जयिनी गये और वहां के शासन का भार वैशम्पायन को सौंपकर कभी अपने श्वसुरालय गंधर्वलोक, कभी चन्द्रलोक और कभी आक्षोद सरोबर के निकट अपने पिता के आश्रम में रहकर सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे।

## कथा, संस्मरण व जीवनी-साहित्य

**श्रेयार्थी जमनालालजी (हरिभाऊ उपाध्याय)** ६॥)

आदर्श देश-सेवक श्री जमनालालजी की विस्तृत जीवनी।

**मानवता के झरने (ग. वा. मावलंकर)** १॥)

बंदियों के जीवन की हृदयस्पर्शी सच्ची घटनाएँ।

**सप्तदशी (संपादक—विष्णु प्रभाकर)** २)

हिन्दी के सत्रह प्रतिनिधि कहानी लेखकों की चुनी हुई कहानियां।

**अमिट रेखाएँ (संपादक—सत्यवती मल्लिक)** ३)

मार्मिक संस्मरण और भाव-चित्रों का अपूर्व संग्रह।

**रीढ़ की हड्डी (संपादक—विष्णुप्रभाकर)** १॥)

हिन्दी के आठ प्रसिद्ध एकांकी नाटककारों के चुने हुए आठ विशेष एकांकियों का संग्रह।

**भारत के स्त्री-रत्न (तीन भाग)** ७॥)

वैदिक युग के जैनकाल तक की आदर्श भारतीय महिलाओं की जीवन-गाथा।

**उपनिषदों की कथाएं (शंकरराव देव)** १)

उपनिषदों की चुनी हुई रोचक व शिक्षाप्रद बालोपयोगी कथाएं।

**मानव-धर्म की आख्यायिकाएं (नानाभाई भट्ट)** १।)

भारतीय जीवन एवं मानवधर्म उद्‌बोधक उपाख्यान।

**अस्थि-पिंजर (यमुनादत्त वैष्णव)** २॥)

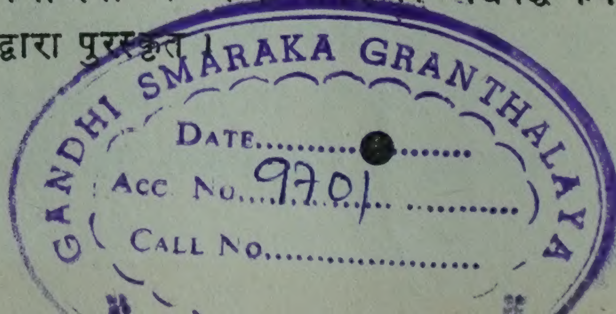
इस कहानी-संग्रह में लेखक ने वैज्ञानिक विषयों के साथ-साथ जीवन के ध्वंसकारी विषयों को भी लिया है।

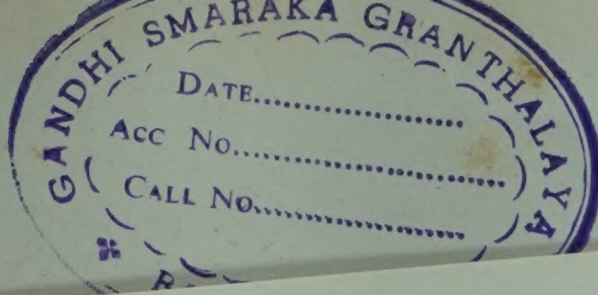
**मैं मरूंगा नहीं ! (यशपाल जैन)** २॥)

हिन्दी के सात्विक और सरल लेखक की प्रेरणादायक कहानियां।

**अशोकवन (पं० गोकुलचन्द शर्मा)** १॥)

जनकनन्दिनी के बन्दी-जीवन की पद्यबद्ध कथा। उत्तरप्रदेश की सरकार द्वारा पुरस्कृत।




GANDHI SMARAKA GRANTHALAYA
DATE.......................
ACC NO.......................
CALL NO.......................

## 'संस्कृत साहित्य-सौरभ'

## की

## पुस्तकें

१. कादम्बरी
२. उत्तररामचरित
३. वेणी-संहार
४. शकुन्तला
५. मृच्छकटिक
६. मुद्राराक्षस
७. नलोदय
८. रघुवंश
९. नागानन्द
१०. मालविकाग्निमित्र
११. स्वप्नवासवदत्ता
१२. हर्ष-चरित
१३. किरातार्जुनीय
१४. दशकुमार चरित : भाग १
१५. दशकुमार चरित : भाग २
१६. मेघदूत
१७. विक्रमोर्वशी
१८. मालतीमाधव
१९. शिशुपाल वध
२०. बुद्ध चरित
२१. कुमारसंभव
२२. महावीर-चरित
२३. रत्नावली
२४. पंचरात्र

मूल्य प्रत्येक का छः आना






छः आना